चतुर्थ अध्याय

"विवेच्य नाटकों में चित्रित धार्मिक संदर्भ"

चतुर्थ अध्याय

'विवेच्य नाटकों में चित्रित धार्मिक संदर्भ'

4.1 प्रस्तावना -

सामान्य जन धर्म से आत्यंतिक प्रभावित होता है। श्रद्धा का विषय होने के कारण धर्म को मनुष्य के वास्तव जीवन में, उसके व्यवहार तथा कल्पना में अनन्यसाधारण महत्व है। समता तथा एकता की भावना सभी धर्मों का मुलभूत विचार है। लेकिन इस नीव को छोड़कर धर्म का विकृत रूप हमारे सामने आता है। जिनमें धार्मिक बाहयांड़बर को प्रमुख स्थान दिया जाता है। धर्म के व्यर्थ पचड़ों में फँसे रहने के कारण समाज अपना विकास नही कर सकता। "प्राय: जिस देश-काल में धर्म के नाम पर जितने आड़ंबर एवं पाखण्ड, प्रवर्त्तमान हैं, वह देश और उसका जनसमाज उतनाही पिछड़ा हुआ होता है।"[1]

कबीर कालके अपने देश में विभिन्न समस्याएँ थी। समाज में अनेक कुप्रथाओं का प्रचलन था। "कबीर काल में देश की धार्मिक अवस्था अत्यंत विषम थी। राजनीतिक अत्याचार और सामाजिक भेद का मूल कारण धार्मिक संकीर्णता थी। शासकों का धार्मिक पक्षपात चरम सीमा को छू रहा था। धार्मिक दृष्टि से यह युग अराजकता का युग था। इस समय अधिकांश मंदिर खण्ड़ित किय गए, शाताब्दियों की संचित धन सम्पत्ति लूट का विषय बनी तथा बलात्कार, अपहरण, अराजकता जीवन के नियम बन गये।"[2]

4.2 ईश्वर संबंधी विचार -

भारतीय संस्कृति में अलौकिक शक्ति का अनन्य साधारण महत्व है। लोगों की श्रध्धा है कि इस अलौकिक शक्ति के सहारे बड़ी बडी समस्याएँ हल हो जाती है। हर

स्फुट में यह शक्ति उनका साथ देती है। इन शक्तियों में इश्वर का सर्वोपरी स्थान है। अलग अलग धर्म संप्रदाय के लोक अलग अलग तरीकों द्वारा इश्वर को प्राप्त करना चाहते है। हिंदुओं में इश्वर प्राप्ति के लिए मंदिरों का तथा मुसलमान लोग खुदा को प्राप्त करने के लिए म. :जदों का आधार लेते हैं।

4.2.1 ईश्वर के रूप : सगुण एवं निर्गुण -

सगुण और निगुण यह ईश्वर के प्रमुख दो रूप माने जाते हैं। ''इश्वर के रूपों के अनुसार उनकी भक्ति की जाती है।. भक्ति जिसका अर्थ है सेवा। भक्ति के विभिन्न अर्थ पाये जाते हैं, जैसे आराधना, आराध्य देवता का नामस्मरण करना, नाम जपना, ध्यानमग्न होना आदि। परतु वास्तव में ईश्वर में पूर्ण रूप से अनुरक्त हो जाना एवं ईश्वर के चरणों में आत्मसमर्पण कर देना ही भक्ति कहलाता है।''[3] कबीर अपनी भक्ति को प्रेम—भक्ति कहते हैं। उनके मतानुसार भक्ति योगी और ज्ञानियों से परे है भक्त कबीर की मान्यता है कि भक्ति ही एकमात्र साध्य है बाकी सारी बाते उसको प्राप्त करने के साधन मात्र हैं।

सगुण रूप -

ईश्वर के विविध रूप कबीर काल में भी व्याप्त थे। कबीरकालीन हिंदू लोग बहुदेववादी थे। वे ईश्वर को एक ही न मानकर अलग अलग मानते थे। सगुण रूप का प्रचार करने वाले लोग ईश्वर को विशिष्ट अवतारों में सीमित कर देते थे। उन्हें जो अवतार पसद आये वह उसके समर्थक बन जाते थे। इस प्रकार सगुणोपासक ईश्वर को अलग अलग रूपों मे बॉट देते थे। हिंदुओं की मान्यता थी कि ईश्वर मंदिरों तथा मूर्तियों में बसा हुआ है। मुसलमानों की यह मान्यता थी कि खुदा मस्जिदमें निवास करता है। इसलिए हिंदु लोग हमेशा मंदिरोंमें जाकर मूर्ति में व्याप्त ईश्वर की पूजा करते हुए दिखाई देते थे।

निर्गुण रूप -

निर्गुण रूप ईश्वर का दूसरा रूप है। कबीर के मतानुसार ''निर्गुण ब्रम्ह का कोई रूप नही है. रूप हिन होकर भी वह दयालु, सबकी रक्षा करनेवाला दीनानाथ है। रूप, आकार से रहित होकर भी वह मानवीय गुणों से विभूषित है।''[4]

कबीर ने अपने गुरू रामानंद से 'राम' नाम की दीक्षा ली थी। यह राम याने दशरथपुत्र राम नहीं। वह निर्गुण निराकार है। ईश्वर का यह निर्गुण निराकार रूप उनके जीवन की सर्वश्रेष्ठ पूँजी है। कबीर ईश्वर को निर्गुण, निराकार, चराचर में व्याप्त मानते है। उनका ईश्वर किसी मदिर, मस्जिद या मूर्ति तक सीमित नही है। वह ईश्वर को हर व्यक्ति में व्याप्त जाते है। इसलिए वह जब सत्संग लगाते थे तो उन्हें मंदिर, मूर्ति, घण्टी बजाना तथा चढ़ावा चढ़ाने की जरूरत महसुस नहीं होती थी। उनके सत्संग में हर धर्म, जाति, संप्रदाय के लोग शरीक होते थे। ज्यादातर उनमें नीची जाति के लोगों का समावेशा होता था। सत्संग के समय एक भक्त के द्वारा किये गए प्रश्न को कबीर उत्तर देते है कि, ''मुझे भगवान चारों ओर नजर आते है। मैं तुम्हारी ओर बैठकर सत्संग शुरू करूंगा। क्योंकि मुझे भगवान तुममें भी नजर आते है।''[5] इस प्रकार कबीर निर्गुण भगवान को चारों ओर व्याप्त मानते हैं।

4 2.2 ईश्वर को प्राप्त करने के मार्ग -

हिंदुओ में ब्राह्मण जाति के लोग पढे-लिखे होने के कारण स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझते थे। वे ईश्वर प्राप्ति के लिए तपस्या करना तथा ज्ञानमार्ग का अवलंब करना आदि पर्याय बताते थे। उनके मतानुसार वेद पुराण पढ़नेवाले लोग ज्ञानमार्ग से ईश्वर की प्राप्ति कर सकते हैं। ईश्वर की प्राप्ति के लिए वे मूर्तिपूजा, मंदिर में घण्टी बजाना, चन्दन चढ़ावा देना आदि बातों को महत्वपूर्ण मानते थे। उनके मतानुसार ऊँची जाति में जन्म लेने से योगसाधना की जाती है तथा नीची जाति के लोग भगवान की प्राप्ति के

लिए उपर्युक्त तरीके नहीं अपना सकते। कबीर की मान्यता है कि ईश्वर हर व्यक्ति के मन में वास करता हैं। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए यागयज्ञ, झूठे धार्मिक कर्मकांड की जरूरत नहीं है। ईश्वर किसी मंदिर में, मस्जिद में वास नहीं करता, ना ही तिर्थाटन करने से ईश्वर की प्राप्ति संभव है। ईश्वर प्राप्ति के लिए योगी बैरागी होने की जरूरत नहीं है। जीवन से विरक्त होकर साधना करने से ईश्वर प्राप्ति नही होती। बल्कि घर ससार में रममान होकर अपने परिवार के प्रति उत्तरदायित्वों की पूर्ति करते वक्त भी इश्वर की भक्ति तथा प्राप्ति की जाती है। इश्वर कभी झूठे कर्मकांड़ में हासिल नहीं होता। उसे इतरत्र ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं। वर हर भक्त के आसपास ही विद्यमान रहता है। उसे हमें सच्चे दिल से खोजना चाहिए। इसप्रकार पलभर में ही हम उसे प्राप्त कर सकते हैं।

"मोको कहाँ ढूँढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में
ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में,
ना तो कौनो क्रिया कर्म में, न ही योग बैराग में
खोजी होये तो तुरंत मिलि है, पल भर की तलास में।"[6]

4.2.3 कबीर के ईश्वर के संबंधी विचार -

कबीर ईश्वर को हर व्यक्ति में व्याप्त मानते थे। इन्सान की खिदमत कर उसे सुखी बनाना, वे खुदा की इबादत मानते थे। बिहार पर विजय प्राप्त कर सिकंदर लोदी कबीर से मिलने काशी आती हैं। अपने साम्राज्य विस्तार के लिए लाखों लोगों का कत्ल करने को वह खुदा की इबादत समझते हैं।

"सिकंदर : हम बिहार पर अपनी फतह का झण्डा गाडकर लौटे हैं, तो क्या यह छोटी सी बात हैं? क्या यह कौम की खिदमत नही? दीन की खिदमत नहीं।

मग्रुर सिकदर को फटकारते हुए कबीर कहते हैं,

कबीर : (मुस्फुरा देता है)

नहीं, यह खिदमत नहीं है। यह दीन की खुदा की तौहिन है।"[7]

कबीर खुद को खुदा का बन्दा कहकर अपना मजहब इन्सान की मोहब्बत मानते थे। कबीर उस खुदा की इबादत करते हैं जो हर इन्सान के दिल में बसता है। उनका ख़ुदा उनके चारों ओर व्याप्त है। खुदा की नजर में न कोई हिंदू है न तुर्क । खुदा हर किसी के मन में वास करता है। हर इंन्सार के दिल में खुदा का अंश होता है।

"कबीर : मेरा परवरदिगार मेरे चारों ओर है, वर मेरे दिल में बसता है। उसकी नजर में न कोई हिंदू है न कोई तुर्क, मैं अल्लाह का नूर हर इन्सान में देखता हूँ, इन्सान के दिल में देखता हूँ।"[8]

ईश्वर भक्त के नस नस में समाहित होता है। इस बात की पुष्टि करते हुए कबीर कहते हैं भक्त का मन जन्नत से भी ज्यादा खुबसुरत होता है। उसके मन में बाग बगीचे, नौ लखतारे, सात समंदर, अनगीनत पारस मोती पाये जाते हैं, इतना भक्त का मन विशाल होता है। सच्ची भक्ति के सामने ये सारी बाते व्यर्थ हैं। भक्त के मन में ही उसका साई (ईश्वर) रममान होता हैं।

"इस घट अंतर बाग बगीचे, इसी मे सिरजनहारा
इस घट अंतर सात समदर, इसी में नौ लखतारा
इस घट अंतर पारस मोती, इसी में परखन हारा
कहत कबीर सुना भाई साधो, इसी में साई हमारा ।"[9]

ब्राह्मण और तुर्क अपनी जाति को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए खुद को खुदा तथा अल्ला के बन्दे कहलाते हुए स्वयं को समाज में उँचा दिखाने की कोशिश करते थे। वह यह मानने को कदापि तैयार नही थे कि सभी एक ही ईश्वर की संतान है। उनकी मान्यता थी कि वह अलग अलग पैदा हुए हैं। तथा अलग अलग ही रहेंगे। उनके

मतानुसार दरिया और लहर एक न होकर अलग अलग है। उसी प्रकार तुर्क और ब्राह्मण एक न होकर जुदा जुदा है। इन मुर्खों को फटकारकर कबीर कहते हैं कि ब्राह्मण और तुर्कों में एक ही ज्योति (ईश्वर) वास करती है।

"कबीर : अरे मुर्ख सुन · एक मटिया एक कुम्हारा।
एक सभी का सिरजनहारा। .... हिंदु की दया और
तुरकन की मेहर मैं त्याग चुका हूँ। तुममें एक ही ज्योति
का पसारा. है।"[10]

4.3 धर्म का थोथापन -

कबीरकाल में काशी हिंदुओ का तिर्थस्थान माना जाता था। वहाँ का कोतवाल मुसलमान था। वहाँ का राजा हिन्दु था तथा वह मुस्लिम बादशाह सिकंदर लोदी को खिराज देता था। समाज में हिंदू तथा मुसलमानों में धर्म का थोथापन हाथपैर पसारे हुए था। मठ के महंत, मुल्ला—मौलवी धर्म के नामपर झगड़ा करते थे। तलवारों की दहशत के आधारपर अपने प्रतिस्पर्धी लोगों को नेस्तनाबूत कर देते थे। इस दहशत की वजह से लोग मुल्ला—मौलवी, पण्ड़ो की बाते चुपचाप सुनते थे। कोई उनके रास्ते में टांग नही अड़ाता था।

4.3.1 महंतो का थोथापन -

अपनी सवारी के साथ काशी पहुँचनेवाले कुरूक्षेत्र के पहुँचे हुए महंत में व्यर्थाभिमान कूट कूट भरा हुआ था। वह सारे हिन्दु होकर भी अलग अलग थे। हिंदू धर्म में भी अलग अलग जातियाँ पायी जाती थी। स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की उनमें होड लगी हुई थी। भीष्म साहनी के 'कबीरा खड़ा बजार में' के हिंदू लोगों में भी अपनी अलगता सिद्ध करने के लिए तथा अपनी अलग बिरादरी दर्शाने के लिए हिंदू

लोग एकही धर्म के होते हुए भी अलग जातियों में विभाजीत पाये जाते है। मुसलमान कारागिर द्वारा बताई गई मूर्ती पर गंगाजल छिड़ककर उसे पवित्र कर स्थापना कराई जाती है।

मठ के महत की सवारी निकलने वाले रास्ते पर उनके अनुयायी के भेस में छिपे गुंडे हाथ में चाबुक, बर्छी, भाले लेकर सवारी के आगे चलते हुए पाये जाते है। किसी नीच की छाया रास्ते पर ना पड़े इसलिए महंत का चेला हाथ में चाबुक लेकर चला आता है। उस रास्ते को गंगाजल छिड़ककर पवित्र बनाया जाता है। जपताप मे लीन होकर इश्वर प्राप्ति का संदेश देनेवाले मठ के महंत दंगाफसाद करते हुए पाये जाते हैं। तलवारों से अपने प्रतिस्पर्धी- मठ के लोगों को चीर दिया जाता है। तोपे भी चलाई जाती है। एक ही धर्म के लोग व्यर्थ अभिमान के वजह से एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते है।

स्वंय को धर्म के ठेकेदार समझने वाले महंत धर्म की अनावश्यक, बेतुकी बातों को जरूरत से ज्यादा महत्व देते हैं। मंदिर में गीत गाने वाले, आरती कहने वाले रैदास की नीची जाति का पता चलते ही उसे डण्डे मारकर बाहर निकाल दिया जाता है। छोटे बच्चे को भी इनके अत्याचार का शिकार होना पड़ता है।

4.3.2 कबीर का विरोध -

धर्म की अनावश्यक बातों को महत्व देनेवाले धर्म के ठेकेदारों का कबीर कड़ा विरोध करते थे। मठ के महंतो का सामान्य जनता के प्रति व्यवहार देखते हुए कबीर कष्टी होते थे। लोगों को नीच कर्म से परावृत्त करने वाले कबीर का मानना है कि इन्सान का मन पवित्र होना चाहिए, पूजा पाठ करने से भगवान के दर्शन नहीं होते वे कहते हैं,

"कोई ऐसा धर्माचार नहीं जो इन्सान को इन्सान के साथ जोड़े, सभी इन्सान को इन्सान से अलग करते है, एक को दूसरे के दुश्मन बनाते है।"[11]

धर्म के गढ़ में यह बात कहने से काशी के लोग बौखला जाते हैं। अपनी करतुतों के खिलाफ धर्म के ठेकेदार एक लफ्ज भी नही सुनना चाहते। उन्हे कोई धर्म सिखलाए यह बात उन्हे अखरती हैं और कबीर को धर्म के नामपर चनलेवाले बाहयाचार अखरते हैं। इसलिए उन दोनों में आये दिन संघर्ष होते हैं। उनके धार्मिक आचरण इन्सान को इन्सान के साथ जोड़ने वाले न होकर इन्सान को इन्सान से अलग करते हैं। एक दूसरे को दुश्मन बनाने वाले इस धर्म ने योथेपन पर कबीर करारा व्यंग्ज करते हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जिसके मन में अपने खुदा के प्रति विश्वास है उसका खुदा सदा उसके संग है। उसपर चाहे कोटी कोटी अत्याचार करो उसका ध्यान ईश्वर भक्ति से भंग नही हो सकता।

4.4 धर्म और साधु -

धर्म और साधु लोगों की श्रद्धा के विषय माने जाते हैं। साधु संतों को समाज के पथप्रदर्शक माना जाता है। लोग आपनी समस्या लेकर उनके पास जाते हैं। धर्म के नाम पर समाज के अमीर तथा गरीब लोग अपनी अपनी योग्यता के अनुसार दान धर्म करते हुए पाये जाते हैं। भगवान की चरणों में भेंट चढ़ाते हैं। उनकी इसी श्रद्धा और विश्वास का दुरूपयोग कर साधु अपना स्वार्थ पूरा करते हुए पाये जाते हैं। धर्म को व्यवसाय का रूप देनेवाले साधुओं का चित्रण भीष्म साहनी जी ने 'कबिरा खड़ा बजार में' इस नाटक में किया है।

4.4.1 साधुओं का संपत्ति का प्रदर्शन -

भोली भाली जनता की श्रद्धावृत्ति का अनुचित लाभ उठाकर धन की प्राप्ति

करने का कार्य साधु करते हैं। ऐसे ढ़ोंगी साधु जगह जगह अपने दुकान खोले बैठे हैं।

'कबिरा खडा बजार में' नाटक में खुद को धर्म के सर्वेसर्वा समझने वाले साधु हर जगह अपनी संपत्ति का प्रदर्शन करते हुए पाये जाते हैं। नये मठ की नींव रखने आये हुए महंत चाँदी की पालकी में आत हैं। कुम्भ के मेले में जाते वक्त सोने पालकी का उपयोग करते हैं तथा भोजन भी सोने की थाली में करते हैं। सोने के पात्रों से पूजा अर्चा करने वाले महन्त के "मठ में एक सौ पन्द्रह हाथी हैं।"[12] जिस संपत्ति का प्रदर्शन वह करते है वह वास्तव में गरीबों के मेहनत की लगाई होती है। गरीबों पर कर लगाकर पंडित मुल्लाओं का पोषण किया जाता है।

4.4.2 साधुओं की भ्रष्टता -

सामान्य जनता के मन में साधुओं के बारे में अनेक अंधश्रध्दाएँ होती है। स्वयं को दिव्यज्ञानी, परमयोगी तथा ब्रम्हज्ञानी बताकर लोगों की श्रद्धा का फायदा उठाया जाता है। स्त्रियों की श्रद्धा का अनुचित लाभ उठाकर उन्हें भ्रष्ट कर दिया जाता है। फिर भी उनके ऐसे भ्रष्ट आचरण को लोग पराक्रम की नजर से ही देखते हैं। "सौ–सौ स्त्रियों के साथ भोग करते हैं फिर भी वीर्यपात नहीं होता।"[13] ऐसे सर्वशक्तिमान साधु स्त्रियों को भोगवस्तु बनाते हैं। मठ के महंत अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए भाले, बर्छी, तलवारें आदि का सहारा लेते हैं। दूसरे मठ के महंतो को अपने से नीचा दिखाकर दंगाफसाद करवाते हैं। शहर में दूसरा मठ नहीं बनने देते।

लोई का पालन पोषण करनेवाले मठ के महंत की मृत्यु के उपरांत गद्दीदार बना उसका चेला बेसहारा लोई को अपनी हवस का शिकार बनाता है। इस प्रकार भ्रष्ट आचरण वाले साधु समाज का कल्याण करने के बजाय समाज का शोषण ही करते हुए पाये जाते हैं। इससे धर्म का योथापन स्पष्ट होता है।

4.4.3 साधुओं की कपटता -

नरेंद्र मोहन ने 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' मे साधुओं की कपटता को पाठकों के सामने लाने का प्रयास किया है। स्वयं को महाबलशाली महंत के परम चेले माननेवाले पाखंडी साधु उपर से धर्म का आवरण चढ़ाए हुए हैं, मगर भीतर से बहुत कपटी हैं। खुद को ईश्वर का दूत समझने वाले साधुओं पर छुआछुत का भूत सवार रहता है। कोतवाल से मिलकर धर्म की जड़ खोदने वाले कबीर का दमन करने की कोशिश करते हुए पाये जाते हैं।

''साधु 2 : धर्म रसातल को जा रहा है हुजुर ।
इन विधर्मियों का दमन किजिए।''[14]

जब यह साधु अपने कपट कारस्थानों द्वारा कबीर का बाल भी बाँका नहीं कर सकते तब कबीर तथा रमजनिया के संबंधो को विपरित रीति से लोगों तक फैलाने का घिनौना कार्य करते हैं। कबीर एवं रमजनिया के संबंधो को अपवित्र बनाकर इश्वर प्राप्ति हेतु कबीर द्वारा बताऐ गए प्रेम मार्ग का मजाक उड़ते हैं।

''साधु एक : अरे रखैल बना रखा है उसे। मैं अब जानो इश्क का राग क्यों आलापता फिरता है (कबीर के दोहे की नकल उतारता है) कबिरा प्याला प्रेम का अन्तर लिया लगाय। रोम रोम में रमि रहा और अंमल क्या खाय।''[15]

4.4.4 कबीर का विरोध -

ऐसे कपटी साधुओं की खिल्ली उड़ाते हुए कबीर साधुओं के ढोंग का पर्दाफाश करते हैं। कबीर भगवान की प्राप्ति के लिए संत बनने तथा दिन रात भगवान का जपजाप करने को विरोध करते हैं। कबीर के मतानुसार गरीबों पर अत्याचार करने वालों को कभी ईश्वर प्राप्ति नहीं होती। स्वंय को साधु कहने वाले बनारस के ठगों को कबीर धूर्त, पाखण्डी और लम्पट भी कहते हैं। धर्म के बारे में शंका उपस्थित करने

वाले कबीर को मारा पिटा जाता है। हमेशा माला हाथ में लेकर भगवान की साधना करने वाले साधुओं की कपटता पर व्यंग करते हुए कबीर कहते हैं,

"माला तो कर में फिरे, जिभ फिरे मुख मांही।"[16]

कबीर के जागरण कार्य की वजह से परंपरा से समाज को कपटता से धोखा देनेवाले साधु, महत आदि के खिलाफ सामान्य लोग बगावत कर देते हैं। उनके खिलाफ आवाज उठाते हैं।

4 5 धार्मिक आडंबरों का बोलबाला -

ईश्वर की भक्ति ईश्वर तक पहुँचने हा सही मार्ग है। मगर इस भक्ति के अलावा जिन व्यर्थ बातों को महत्व दिया जाता है उनका समावेश आडंबरों में होता है। रोजा, नमाज, छापातिलक, बली, मालाजप, तिर्थाटन आदि आंड़बरपूर्ण बाते मानी जाती है। कबीरकालीन समाज में सच्चे धर्म का आकलन करने के बजाय धार्मिक आड़बरों को महत्व दिया जाता था। कबीर के समय में भारतीय समाज में बहुतसी धर्म साधनाएँ प्रचलित थी।

4 5.1 मालाजाप -

काशी के महंत, पण्डे भगवान की सच्चे दिल से आराधना छोड़कर व्यर्थ ही बातों में अपना समय गवांते हैं। तथा भगवान का जप करते हुए माला के मनके गिनकर साधु, महंत आम लोगों की आँखो में धूल झोकने का कार्य करते हैं। उन्हें कबीर कहते हैं कोरा नामजप निरर्थक होता है। मन में अगर श्रद्धा का भाव न हो तो सिफ राम राम जपने से जीवन का बेड़ा पार नहीं लग जाता। जीवन को गति नहीं मिलती। वैसे ही गुड गुड़ कहने से मुँह मीठा नहीं होता, आग आग कहने से पॉव नहीं जलता, पानी कहने से किसी की प्यास नहीं बुझती। मन से की गई सच्ची आराधना ही जपजाप पूजा को सार्थक बनाती है।

"कबीर : राम राम और अल्ला मल्ला का जप करने से कुछ नहीं होगा।

गुड गुड बोलते रहने से मुँह मीठा हो जाता है?'

लोई : आग आग कहने से कोई जल जाता है क्या?

रैदास पानी पानी पुकारने से किसी की प्यास बुझ जाती है?"[17]

उसी प्रकार घंटो आसन मारकर भगवान की भक्ति का नाटक करने वाले को कबीर कहते हैं, जपमाला पहनने से ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता। उसके लिए अपने मन को पवित्र रखना जरूरी है। उसे घंटो आसन मारकर जपजाप करने की आवश्यकता नहीं।

"कबीर : पंडित होय के आसन मारे लम्बी माला जपता है।

अंदर तेरे कपट करतनी सो भी साहब लखता है।"[18]

इस प्रकार कबीर मालाजप का विरोध कर साधु, महंतो को धर्म की सच्ची राह पर चलने की सलाह देते हैं।

4.5.2 छापातिलक -

मालाजप की तरह छापा तिलक भी बाहयाड़ंबर ही है। खुद को अत्युच्च कोटि के भक्त कहलानेवाले धर्म के ठेकेदार धार्मिक बाहयाड़ंबरों के सहारे खुद की झोली भरते हैं। एक ही धर्म में अपनी विविधता सिद्ध करने के लिए अलग अलग रंग के टिके लगाते हैं। अलग अलग तिलक लगाकर वह अपने संप्रदाय का प्रतिनीधित्व करते हुए पाये जाते हैं। ब्राह्मण जाति शैव, वैष्णव, शाक्त आदि संप्रदायों मे बँटी हुई पायी जाती हैं। वैष्णव सफेद टीका लगाते हैं, लाल टीका लगानेवाले शाक्त स्वयं को देवी को परम भक्त समझते हैं। सीधे रूख का टीका तथा बीच में लाल बिन्दी लगाने वाले शैव कहलाते हैं। कोई एक, कोई दो तथा कोई तीन तीन रेखाएँ लगाता हैं।

एक रेखा लगानेवाले भक्त ब्रम्ह को मानते हैं। दो रेखाओंवाले जीव तथा ब्रम्ह दोनों को तथा तीन रेखा लगानेवाले जीव ब्रम्ह तथा प्रकृति तीनो को मानते हैं। जो टीका नहीं लगाते उन्हें चाण्ड़ाल माना जाता हैं।

इसपर कबीर कहते हैं, भगवान के प्रति भक्ति, श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए टीके लगाने की जरूरत नहीं है।

4.5.3 अजान देना -

खुद को अल्ला का नूर समझने वाले मुल्ला अल्ला को उँची आवाज में पुकारकर समाज के लोगों को यह दिखाता है कि अल्ला के प्रति उसके मन में कितनी श्रद्धा है तथा वह अल्ला का कितना नजदीकी बंदा है। इस पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं, जोर से चिल्लाने से यह आवाज सतवें आसमान, खुदातक नहीं पहुँच सकती। अल्लाह ताला उँचा सुनने लगे हैं क्या? इतनी ऊँची आवाज में अजान देने की जरूरत नही क्या खुदा बहरा हो गया है। उसे मुर्गे की तरह बाँग देने की जरूरत नहीं।

''कॉकर पाथर जोर करि
मस्जिद लयी चुनाय
ता चढ़ मुल्ला बॉग दे
क्या बहरो भयो खुदाय?''[19]

खुदा को ऊँची आवाज देकर जगाने की जरूरत नहीं वह हर भक्त के पास रहता है। उसकी समस्याएँ जानता है। उसे अलग से सुनाने की जरूरत नहीं। शूद्र से शूद्र जीव के मन की भाषा भी इश्वर सुनता है। बस उसे मन से पुकारने की जरूरत है।

''चिऊँटी के पर नैवर बाजै,
सो थी साहब लखता है।''[20]

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR

कबीर की फटकार तिलकधारी साधुओं, मुल्लाओ को हैराण कर देती है। साम्यवादी कबीर यह आड़बरपूर्ण बाते बिल्कुल सह नहीं कर पाते।

4.5.4 व्रत -

मुसलमान लोग अल्ला के प्रति श्रद्धा के लिए व्रत यानी रोजा रखते हैं। दिनभर उपवास करते हैं। कुछ खाते पिते नहीं। दिनभर अल्लाह का नाम लेते हैं और वही लोग शाम होने पर मांस का भक्षण करते हैं। दिन भर खुदा की इबादत के लिए उपवास रखना और शाम के वक्त मांस खाना ये बाते कबीर को अखरती है।

4.6 धर्म के ठेकेदार और कबीर -

कबीर काल में समाज में कीड़े मकौडों की तरह फैले हुए पंड़ित, मुल्ला समाज के ही चंद टुकडों को अपने काबु में कर समाज में अंधश्रद्धा फेलाने का कार्य करते थे। यह लोग समाज को अज्ञान के अंधकार में धकेलते थे। अगर कोई उन्हें अधकार की गर्त से बाहेर निकालना चाहे तो उसे ही शैतान कहकर लोगों के मन में उस इन्सान के प्रति घृणा पैदा कर देते थे। बाहर से साधु दिखनेवाले यह किड़े छलकपट से लोगों को अज्ञान की कर्त में धकेलते थे।

कबीर ने ऐसे आचरण हिन लोगों को पैनी चुनौती दी। वर्ण, जाति, अंधविश्वास को अधिकतर महत्व देने वाली जातियों में बाहयाचार, धार्मिक कर्मकांड, कलमा, सुन्नति आदि महत्वपूर्ण बातें मानी जाती थी। ऐसे समाज में निम्न जातियों के प्रति उच्च जातिवालों का वर्तन बहुत अच्छा नहीं था। शूद्र, निम्नजाति के लोगों में कबीर ने आत्मबल, एका पैदा किया और उन्हे समाज की पूरी शक्तियों के खिलाफ लड़ने को प्रेरित किया। कबीर एक संत थे। उन्होंने समाज सुधार का कार्य किया। डॉ. कमला प्रसाद का कथन है कि, ''संतो की परम्परा भारतीय जनजीवन में एक ऐसा तूफान है,

जो पिछड़ी जातियों की संघर्षोन्मुख शक्ति का परिचायक है। उनमें भी कबीर संगठन का सबसे मुखर व्यक्तित्व है।''[21]

4.5.1 पंडित मुल्लाओं का कबीर के प्रति षड़यंत्र -

कबीर पर पाबंदिया लगाने के लिए धूर्त मुल्ला और पण्ड़े कोतवाल को साथ मिलाकर हिंदु मुसलमानों में दंगाफसाद करवाते हैं। हिंदू मुसलमानों के नाममात्र झगड़े में नीची जाति के जुलाहपट्टी में रहने वाले कुन्हार, मोची, कसाई, जुलाहे, चमार आदि निष्पाप लोग मारे जाते हैं। पंड़ित तथा मुल्ला कबीर पर कीचड़ उछालते फिरते हैं। ताकि वह लोगों की नजरों में गीर जाए। कबीर तथा उसके साथियों को जुनूनी करार देते हुए हवालात में बद कर देते हैं। उनका मानना होता है कि कबीर ने दीन की तौहीन की है तथा उसके साथी और वह कवित्त गाकर लोगों को धर्म के खिलाफ भड़काते हैं। नीच जाति के कबीर की हैसियत भी नहीं कि वह दीन के, खिलाफ एक लफ्ज भी उठाये।

4.5.2 कबीर के खिलाफ साजीश -

सत्यवादी धर्म का पुरस्कार करनेवाले, ईश्वरप्राप्ति के लिए प्रेममार्ग अपनाने की सल्लाह देनेवाले कबीर को मुल्ला मौलवी, पण्ड़े जान से मार डालना चाहते थे। कबीर उनके धर्म का सरेआम मजाक उड़ाये यह बात उन्हें सहन नहीं होती थी तथा कबीर से मुठभेड़ होने पर वे कबीर को मारने दौड़ते थे। पहुँचे हुए साधु महात्मा के पास शंकानिरसन के लिए गए भक्त कि जाती का पता चलते ही उसे डंडों की मार देकर भगाया जाता है। यह बात कबीर को अखरती है। वे सत्संग लगाते हैं जिनमें सभी जाति के लोग शामिल होते हैं। सत्संग की धूम मच जाने से कबीर सामान्य लोगों के 'आंख का तारा' बन जाते हैं।

कमजात जुलाहा अपने से ऊँचा न उठ पाये इसलिए धर्म के ठेकेदारों द्वारा कबीर का झौंपड़ा जलाया जाता है। इसमें कबीर का घर संसार तबाह हो जाता है। दूसरो को रोकने की आदत से समाज के उच्च लोग कबीर के दुश्मन बन जाते है। इस दुश्मनी की वजह से पंड़ित, मुल्ला कबीर के पुत्र कमाल की दुर्दशा करते हैं। कमाल को जानबुझकर कोठेवाली के यहाँ छोड़ा जाता है ताकि उसका भविष्य बरबाद हो जाए। वेश्याओं, दलालों के माहौल में पलकर बड़ा हुआ कमाल आवारा निकम्मा बन जाता है। यही वह लोग चाहते हैं।

समाज के विरूद्ध डट़कर खड़े रहे कबीर के दबाने की हर कोशिश समाज कंटकों द्वारा की जाती है। कबीर के हाथ पैर जंजीरों से बांधकार उसे नदी में डुबोया जाता है। उन्हें जिन्दा आग में झोंक दिया जाता है। मदमस्त हाथी के पैरों में डाल दिया जाता है। फिर भी कबीर को आंच नही आती। उन सारी बातों से कबीर को अहमियत मिलती है। उनकी शख्सियत उभरती है। इस बात से गुस्से में आये हुए धर्म के ठेकेदार अपनी कूटनीति से ऐसी चाल चलते हैं, जिससे कबीर पर से लोगों का विश्वास उठ जाए। कबीर के सत्संग में उसके कवित्त गानेवाली, नाचनेवाली रमजनिया से कबीर के ताल्लुकात जोड़कर कबीर को नीचा दिखाने की कोशिश की जाती है। ताकि कबीर लोगों की नजरों मे गीर जाए, लोग उससे नफरत करने लगे तथा वे कबीर की बताई गई बातोंपर विश्वास न करें। मुल्ला, मौलवी, उपदेशक कबीर की निर्भत्सना करते हैं।

''साधु 1 : सुना तुमने? सुनकर यकीन न हुआ न? मुझे भी नहीं हुआ था। नाचने--गानेवाली के साथ कबीर के संबध। छी: छी:।

साधु 2 : तुम्हारी मुराद उस नाचने गानेवाली रमज़निया से है। अरे, वह तो वेश्या है, वेश्या।

मुल्ला : बड़ा उपदेशक बना फिरता था। खुल गयी न सारी पोल! मैं तो पहले

ही कहता था जिसका कोई मजहब नहीं उसका इखलाक क्या होगा?
फँसा भी कहाँ—रमजनिया जैसी वेश्या के साथ।

तुर्क : मुल्ला साहब, मस्जिद को बुरा कहता था, अजान को गाली देता था,
ससुरा गिरा कहाँ?''[22]

इस प्रकार मुल्ला मौलवी, पण्ड़े अपने ढ़ोंग का पर्दाफाश न हो जाए इसलिए अपने पाप को छिपाने के लिए कबीर के उज्वल चरित्र पर किचड़ उछालते हैं।

4.6.3 कबीर का संघर्ष -

कबीर झूठे साधुओं तथा मुल्लाओं के विरूद्ध कड़ा संघर्ष करते हुए पाये जाते हैं। इन झूठे साधुओं की प्रदर्शन वृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं, माला फेरकर, भस्म लगाकर, दाढ़ी मुंछ मुंड़वाने वाले साधुओं के भेस में छिपे गुंडो को कैसे साधु कहा जा सकता है। साधु के वस्त्र पहननेवालों के दिल नें भंगार भरा हुआ होता है। ऐसे स्वार्थी, धर्मांध लोगों के खिलाफ लोगों को जागृत करने का कार्य कबीर पूरी लगन के साथ करतें है। वह लोगों को मंदिरों तथा मस्जिदों में जाने से रोककर पंड़ित, पुजारियों तथा मुल्ला मौलवीयों को गालियाँ देते हैं। कबीर लोगों को समझाते हैं कि पत्थर पूजने से भगवान की प्राप्ति नहीं होती। किताब कुराण पढ़ने सें कोई पीर नहीं बनता। हिंदू मुसलमान दोनों का खुदा एक ही है। हिंदू जिसे महादेव के नाम से जानते हैं मुसलमान उसे मुहम्मद नाम देते हैं। एक ही जमीन पर रहने वाले एक जैसे दिखनेवाले लोग अलग अलग हो नहीं सकते।

मुल्ला, पण्ड़े सिर्फ वेदपुराण पढ़ने का कार्य करते हैं। वे उसका मर्म नहीं जानते। वे यह नहीं जानते कि अलग नाम धारण करने वाले, अलग अलग जाति के लोगों में वास्तव में एक ही ईश्वर का अस्तित्व है।

''वही महादेव, वही मुहम्मद, ब्रम्हा आदम कहिये।
को हिंदू, को तुरक कहावै, एक जिमी पर रहिये।
बेद किताब पढ़े वे कुतबा, वे मुल्ला पाण्डे।
बेगी जोगी नाम धरायो इक माटी के भाण्डे।''[23]

इस प्रकार अपने खिलाफ साजीश करने वालों की तरफ ध्यान न देते हुए कबीर समाज प्रबोधन का कार्य करते हैं।

4.7 धर्म के ठेकेदारों की ज्ञानहीन अंधआस्था -

कबीर युगीन समाज में खुद को संत, मुल्ला, पीर सन्यासी कहलानेवाले धर्म के ठेकेदार ईश्वर को प्राप्त करने का वास्तविक मार्ग भूल गये थे। वे स्वयं को परमज्ञानी समझकर गर्व और माया में व्यस्त रहते थे। उनका मन ईश्वर की श्रद्धा के बजाय अहंकार और क्रोध से भरा हुआ था। साधु बनों में रहकर ज्ञान साधना करते थे। तरह तरह की क्रियाएँ करते थे जो पूर्ण रूप से झूठी थी। उनकी झूठी अंधआस्था से न ही भक्ति हो सकती थी और न ही भगवान की प्राप्ति।

4.7.1 अंधआस्था -

कबीर के समय में धर्म परायन लोंगों का ऐसा विश्वास था कि, काशी में मृत्यु होने से स्वर्गप्राप्ति होती है तथा मगहर में मृत्यु होने पर नरक का वास मिलता है। इस वजह से लोग बड़ी संख्या में काशी आने लगते हैं। स्वर्ग प्राप्ति की लालसा में खुद को शिवजी को सामने चीर ड़ालते है। लोग सिर मुंड़वाकर तिर्थाटन करते हैं। मस्जिद में अल्लाह को बांग देकर जगाते हैं। रोजा रखते है, नमाज पढ़ते हैं। इससे उनको विश्वास है कि स्वर्ग प्राप्ति हो जाएगी। वह झूठे अंधविश्वासों के पीछे लगकर ईश्वर की सच्ची साधना को भूल जाते हैं। पंडित लोग पढ़े लिखे होने के कारण, शास्त्रार्थ

करने के कारण खुद को बहुत ऊँचा तथा अनपढ़ लोगो को तुच्छ समझते हैं। काजी कुराण को पढ़ने से खुद को बहुत होशियार तथा अकलमंद समझते हैं।

4.7.2 कबीर का विरोध -

कबीर समाज में रहनेवाले धर्म के ठेकेदारों (ब्राह्मण, मुल्ला, मौलवी, पण्डो) के तामसी विचारों तथा आचार को देखकर उन्हे पाखण्डी कहकर फटकारते हैं। योगियों तथा साधुओं को आडे हाथों लेते हैं। कबीर इन लोगों के आचरण पर कठोर प्रहार करते है। कबीर अपने समय के अंधविश्वासों का इसलिए कड़ा विरोध करते है कि, उन सभी अंधविश्वासों से समाज को मुक्त करना ही कबीर का एकमात्र ध्येय है। कबीर इन अंधविश्वासों की निरर्थकता सिद्ध करते हुए अपने अंत दिनों में मगहर में जा बसते हैं।

कबीर कहते है यदि उम्रभर भगवान की भक्ति नहीं की और केवल काशी में मृत्यू होने से स्वर्ग प्राप्ति नहीं हो सकती। यह सब लोगों की बुद्धि का फेर है। लोगों को इस भरम में नही होना चाहिए कि काशी में प्राण निकलने से सीधे स्वर्गारोहण होगा। अगर मन में इश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा हो तो मगहर और काशी दोनों जगह पवित्र हैं।

कबीर धार्मिक क्रियाओं को महत्व देने के बजाय समाज के गरीब, बेसहारा लोगों पर दया दिखाने को ज्यादा महत्वपूर्ण समझते हैं। वह सिर्फ मन की भक्ति को महत्व देते हैं। डॉ. रामचंद्र तिवारी के मतानुसार "कबीरदास ने जहाँ कहीं ढोंग, दिखावा, कपट, धोका, फरेब, आड़ंबर, स्वांग, प्रपंच, छल, छद्‌म देखा वहीं निर्भय होकर प्रहार किया। पंड़ित हो, चाहे मौलवी हो, गुरू हो चाहे पीर, योगी हो चाहे फकीर, हिंदू हो चाहे मुसलमान यदि वह सच्चाई के मार्ग से अलग है, तो कबीर ने उसको चेतावनी दी है, टोका है। खिल्ली उड़ाई है। व्यंग्य और उपहास किया है। उन्होंने सहज सात्विक जीवन को महत्व दिया है।"[25]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि धर्म के नामपर किसी भी अंधविश्वास को स्वीकार करने के पक्ष में कबीर नहीं थे, उनकी मान्यता थी की, व्रत उपवास करनेवाले सच्चे दिल से भगवान की भक्ति नहीं करते वह सिर्फ परंपरा का पालन करते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि कबीर युगीन धार्मिक परिवेश को विवेच्य नाटकों के जरिए पाठकों के सामने लाने का प्रयास किया गया है। भगवान के निर्गुण रूप के समर्थक कबीर भगवान को एक ही मानते हुए, उसे चराचर में व्याप्त मानते हैं। जीवन से उदासीन होकर योग, बैराग, हट साधना आदि के जरिए ईश्वर को प्राप्त करने वालों को कबीर सही दीशा निर्देश करते हुए पाये जाते हैं। सत्ता के घमंड में लाचार जनता पर अत्याचार करने वाले शासक सिकंदर लोदी को करारा जबाब देकर कबीर उसका अहंकार चूर चूर कर देते हैं। एक ही जाति में रहकर अपना अलगाव, अपनी श्रेष्ठता सिद्‍ध करने वाले महंतो, ब्राह्मणों पर कबीर तीव्र व्यंग्य करते हुए पाये जाते हैं। वे एक ऐसे धर्म की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं जिसकी राहपर हिंदू, मुसलमान, चमार, जुलाहा, नाई आदि सभी जाति धर्मों के लोग सुख शांति से चल सकें। वह खुद के ईश्वर के बंदे तथा सर्वशक्तिमान समझनेवाले साधुओं द्‍वारा आम जनता को प्रताड़ना ही मिलती है। नीची जाति के लोग तो उनकी दहशत में ही अपनी जिंदगी गुजारते हुए पाये जाते हैं। अजान देकर, माला फेरकर व्रत उपवास द्‍वारा भगवान की प्राप्ति का नाटक करनेवाले साधुओं का भेस परिधान किए हुए गुंडो पर कबीर निर्भयता से व्यंग्य करते हुए दिखाई देते हैं।

धर्म के नामपर सामान्य तथा भोली भाली जनता के विश्वास का अनुचित लाभ उठाने वाले धर्म के ठेकेदारों के खिलाफ कबीर के क्रोध का उद्रेक इस अध्याय में दर्शाया गया है।

❖ संदर्भ मुची ❖

			पृष्ठ
1.	प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों में सामाजिक चेतना (आठवें दशक की कहानी में चेतना के विविध आयाम से उद्धृत)	: डॉ. अमरसिंह लोधा	6
2.	संतकाव्य की सामाजिक प्रासंगिकता	: रविंद्रकुमार सिंह	55
3	— वही —		71
4.	दी बीजक ऑफ कबीर	: रेवरेंड अहमदशाह	35
5.	कबिरा खड़ा बजार में	: भीष्म साहनी	59
6	— वही —		60
7.	— वही —		107
8.	— वही —		108
9.	— वही —		108
10.	— वही —		65
11.	— वही —		72
12.	— वही —		34
13.	— वही —		34
14.	कहै कबीर सुनो भाई साधो	: नरेंद्र मोहन	68
15.	— वही —		84
16.	— वही —		26
17.	इकतारे की आँख	: मणि मधुकर	67
18.	कबिरा खड़ा बजार में	: भीष्म साहनी	25
19.	— वही —		73
20.	कहै कबीर सुनो भाई साधो	: नरेंद्र मोहन	25
21.	मध्यकालीन रचना और मूल्य	: डॉ. कमला प्रसाद	22
22.	कहै कबीर सुनो भाई साधो	: नरेंद्र मोहन	84
23.	कबिरा खड़ा बजार में	: भीष्म साहनी	43
24.	कबीर मीमांसा	: डॉ. रामचंद्र तिवारी	138